मूल्य पचीस पैसे

श्रीः

वाल्मीकीय रामायणान्तर्गत

मूलरामायण

हिन्दी-अनुवादसहित

अनुवादक--

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री

श्रीहरि:

निवेदन

आजकल रामायण और भागवत—ये ही दो ग्रन्थ ऐसे हैं जो मोहमहासागरकी भँवरमें पड़े हुए प्राणियोंको पार लगानेके लिये जहाज कहे जा सकते हैं। इन्हीं दो ग्रन्थरत्नोंने राम-कृष्णके नामोंकी महिमा बताकर अनन्त जीवोंका उद्धार किया है और आज भी कर रहे हैं। वास्तवमें रामायण और भागवतके रूपमें भगवान् राम तथा कृष्ण ही अपने दर्शन एवं अमृतमय उपदेशसे हमें कृतार्थ कर रहे हैं।

इन दोनों ग्रन्थरत्नोंको हमारे लिये सुलभ करनेका अधिक श्रेय प्रेमावतार देवर्षि नारदजीको है। इन्होंने ही महर्षि व्यासको सरस्वतीके तटपर भागवत-संहिता बनानेके लिये उत्साहित किया था और इन्होंने ही तमसानदीके (जिसे आजकल टौंस कहते हैं) तटपर महर्षि वाल्मीकिको मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामके जीवनका संक्षिप्त परिचय दिया था, जिसके आधारपर महर्षिने रामायणकी रचना की। उस समयतक लौकिक संस्कृतमें गद्यके सिवा पद्यमय रचनाका सूत्रपात ही नहीं हुआ था; अतः यह नूतन पद्यमय ग्रन्थ आदिकाव्यके नामसे विख्यात हुआ और इसके प्रणेताको आदिकविकी उपाधि मिली। इस आदिकाव्यका प्रथम सर्ग ही मूलरामायणके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें नारदजी-के वचनोंका ही सङ्कलन है, यही सम्पूर्ण रामायणका बीज-सर्ग है।

देवर्षि नारद और महर्षि वाल्मीकिका यह संवाद उस समय हुआ था जब कि भगवान् राम वनसे लौटकर अवधके राज्य-

सिंहासनपर आसीन हो चुके थे, इसका समर्थन मूलरामायणके ही ८९ से ९१ तकके श्लोकोंके देखनेसे होता है। उदाहरणके लिये देखिये—

> रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥ ८९ ॥
> ···न पुत्रमरणं केचिद् द्रक्ष्यन्ति ········ ॥९१॥

'श्रीरामचन्द्रजीने सीताको पानेके अनन्तर पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लिया है ····अब कोई अपने पुत्रकी मृत्यु नहीं देखेंगे···।' यहाँ भूत और भविष्यकालिक क्रियाओंका प्रयोग होनेसे उक्त कथनकी पुष्टि होती है।

इसके अतिरिक्त भगवान् रामने अपने पुत्र लव और कुशके मुखसे स्वयं भी रामायण-गान सुना था: अतः उनके समकालिक होनेके कारण वाल्मीकीय रामायणोंको अन्य रामायणोंकी अपेक्षा अधिक आदरणीय और प्रामाणिक माना गया है। अनेकों प्रेमी भक्त इसके बीज-सर्ग—मूलरामायणका नित्य पाठ किया करते हैं। परन्तु 'अर्थानुसन्धानपूर्वक पाठ अधिक उपयोगी होता है इस विचारसे संस्कृत न जाननेवाले लोगोंकी सुविधाके लिये मैंने इसका अनुवाद प्रस्तुत किया है। इसमें पूरे सौ श्लोक हैं, प्रत्येक श्लोकका मूलके अनुसार साधारण अनुवाद किया गया है। मेरी अल्पज्ञताके कारण यदि इसमें भूलें रह गयी हों तो उदार पाठक कृपया मुझे क्षमा करेंगे।

विनीत—अनुवादक

श्रीगणेशाय नमः

मूलरामायणम्

ॐतपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥

तपस्वी वाल्मीकिजीने तपस्या और स्वाध्यायमें लगे हुए विद्वानोंमें श्रेष्ठ मुनिवर नारदजीसे पूछा—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥ २ ॥

[हे मुने !] इस समय इस संसारमें गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, उपकार माननेवाला, सत्यवक्ता और दृढ़प्रतिज्ञ कौन है ?

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः ॥ ३ ॥

सदाचारसे युक्त, समस्त प्राणियोंका हितसाधक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन (सुन्दर) पुरुष कौन है ?

आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोपस्य संयुगे ॥ ४ ॥

मनपर अधिकार रखनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, कान्तिमान् और किसीकी भी निन्दा नहीं करनेवाला कौन है तथा संग्राममें कुपित होनेपर किससे देवता भी डरते हैं ?

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम् ॥ ५ ॥

हे महर्षे ! मैं यह सुनना चाहता हूँ, इसके लिये मुझे बड़ी उत्सुकता है और आप ऐसे पुरुषको जाननेमें समर्थ हैं ।

श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः ।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥

महर्षि वाल्मीकिके इस वचनको सुनकर तीनों लोकोंका ज्ञान रखनेवाले नारदजीने उन्हें सम्बोधित करके कहा, अच्छा सुनिये और फिर प्रसन्नतापूर्वक बोले---

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥ ७ ॥

हे मुने ! आपने जिन बहुत-से दुर्लभ गुणोंका वर्णन किया है उनसे युक्त पुरुषको---मैं विचार करके कहता हूँ, आप सुनें ।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी ॥ ८ ॥

इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं, जो लोगोंमें रामनामसे विख्यात हैं, वे ही मनको वशमें रखनेवाले, महाबलवान्, कान्तिमान्, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं ।

बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः ।
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥ ९ ॥

वे बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, वक्ता, शोभायमान तथा शत्रुसंहारक हैं,

उनके कंधे मोटे और भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं। ग्रीवा शङ्खके समान और ठोढ़ी मांसल (पुष्ट) है।

महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः॥ १०॥

उनकी छाती चौड़ी तथा धनुष बड़ा है, गलेके नीचेकी हड्डी (हँसली) मांससे छिपी हुई है, वे शत्रुओंका दमन करनेवाले हैं। भुजाएँ घुटनेतक लंबी हैं, मस्तक सुन्दर है, ललाट भव्य और चाल मनोहर है।

समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥ ११॥

उनका शरीर [अधिक ऊँचा या नाटा न होकर] मध्यम और सुडौल है, देहका रंग चिकना है, वे बड़े प्रतापी हैं। उनका वक्षःस्थल भरा हुआ है, आँखें बड़ी-बड़ी हैं। वे शोभायमान और शुभलक्षणोंसे सम्पन्न हैं।

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥ १२॥

धर्मके ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजाके हित-साधनमें लगे रहनेवाले हैं। वे यशस्वी, ज्ञानी, पवित्र, जितेन्द्रिय और मनको एकाग्र रखनेवाले हैं।

प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता॥ १३॥

प्रजापतिके समान पालक, श्रीसम्पन्न, वैरिविध्वंसक और जीवों तथा धर्मके रक्षक हैं।

रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥१४॥

स्वधर्म और स्वजनोंके पालक, वेद-वेदाङ्गोंके तत्त्ववेत्ता तथा धनुर्वेदमें प्रवीण हैं ।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥१५॥

वे अखिल शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, स्मरणशक्तिसे युक्त और प्रतिभा-सम्पन्न हैं, अच्छे विचार और उदार हृदयवाले वे रामचन्द्रजी बातचीत करनेमें चतुर तथा समस्त लोकोंके प्रिय हैं ।

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥१६॥

जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार सदा रामसे साधु पुरुष मिलते रहते हैं । वे आर्य एवं सबमें समान भाव रखनेवाले हैं, उनका दर्शन सदा ही प्रिय मालूम होता है ।

स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥१७॥

सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त वे श्रीरामचन्द्रजी अपनी माता कौसल्याके आनन्द बढ़ानेवाले हैं, गम्भीरतामें समुद्र और धैर्यमें हिमालयके समान हैं।

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः ।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥१८॥
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।

वे विष्णुभगवान्के समान बलवान् हैं, उनका दर्शन चन्द्रमाके समान मनोहर प्रतीत होता है, वे क्रोधमें कालाग्निके समान और क्षमामें पृथिवीके सदृश हैं, त्यागमें कुबेर और सत्यमें द्वितीय धर्मराजके समान हैं।

तमेवंगुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१९॥
ज्येष्ठं ज्येष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम्।
प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया ॥२०॥
यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत् प्रीत्या महीपतिः।

इस प्रकार उत्तम गुणोंसे युक्त और सत्य पराक्रमवाले सद्गुणशाली अपने प्रियतम ज्येष्ठ पुत्रको, जो प्रजाके हितमें संलग्न रहनेवाले थे, प्रजावर्गका हित करनेकी इच्छासे राजा दशरथने प्रेमवश युवराजपदपर अभिषिक्त करना चाहा।

तस्याभिषेकसम्भारान् दृष्ट्वा भार्याथ कैकयी ॥२१॥
पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत।
विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ॥२२॥

तदनन्तर रामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ देखकर रानी कैकेयीने, जिसे पहले ही वर दिया जा चुका था, राजासे यह वर माँगा कि रामका निर्वासन (वनवास) और भरतका राज्याभिषेक हो।

स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः।
विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम् ॥२३॥

राजा दशरथने सत्य वचनके कारण धर्मबन्धनमें बँधकर प्यारे पुत्र रामको वनवास दे दिया।

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन् ।
पितुर्वचननिर्देशात् कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥२४॥

कैकेयीका प्रिय करनेके लिये पिताकी आज्ञाके अनुसार उनकी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए वीर रामचन्द्र वनको चले ।

तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।
स्नेहाद् विनयसम्पन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥२५॥
भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन् ।

तब सुमित्राके आनन्द बढ़ानेवाले विनयशील लक्ष्मणजीने भी जो अपने बड़े भाई रामको बहुत ही प्रिय थे, अपने सुबन्धुत्वका परिचय देते हुए स्नेहवश वनको जानेवाले बन्धुवर रामका अनुसरण किया ।

रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमा हिता ॥२६॥
जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ॥२७॥
सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा ।
पौरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च ॥२८॥

और जनकके कुलमें उत्पन्न सीता भी जो अवतीर्ण हुई देवमायाकी भाँति सुन्दरी, समस्त शुभलक्षणोंसे विभूषित, स्त्रियोंमें उत्तम, रामकी प्राणोंके समान प्रियतमा पत्नी तथा सदा ही पतिका हित चाहनेवाली थी, रामचन्द्रजीके पीछे चली; जैसे चन्द्रमाके पीछे रोहिणी चलती है । उस समय पिता दशरथने [अपना सारथि भेजकर] और पुरवासी मनुष्योंने [स्वयं साथ जाकर] दूरतक उनका अनुसरण किया ।

शृङ्गवेरपुरे सूतं गङ्गाकूले व्यसर्जयत् ।
गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम् ॥२९॥

फिर शृङ्गवेरपुरमें गङ्गा-तटपर अपने प्रिय निषादराज गुहके पास पहुँचकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने सारथिको [अयोध्याके लिये] विदा कर दिया ।

गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया ।
ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः ॥३०॥
चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात् ।
रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः ॥३१॥
देवगन्धर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन् सुखम् ।

निषादराज गुह, लक्ष्मण और सीताके साथ राम—ये चारों एक वनसे दूसरे वनमें गये, मार्गमें बहुत जलोंवाली अनेकों नदियोंको पार करके [भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचे और गुहको वहीं छोड़] भरद्वाज मुनिकी आज्ञासे चित्रकूटपर्वतपर गये । वहाँ वे तीनों देवता और गन्धर्वोंके समान वनमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हुए एक रमणीय पर्णकुटी बनाकर उसमें सानन्द रहने लगे ।

चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तदा ॥३२॥
राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन् सुतम् ।

रामके चित्रकूट चले जानेपर पुत्रशोकसे पीड़ित राजा दशरथ उस समय पुत्रके लिये [उसका नाम ले-लेकर] विलाप करते हुए स्वर्गगामी हुए ।

गते तु तस्मिन् भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥३३॥

नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद् राज्यं महाबलः ।
स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः ॥३४॥

उनके स्वर्गगमनके पश्चात् वसिष्ठ आदि प्रमुख ब्राह्मणोंद्वारा राज्यसञ्चालनके लिये नियुक्त किये जानेपर भी महाबलशाली वीर भरतने राज्यकी कामना न करके पूज्य रामको प्रसन्न करनेके लिये वनको ही प्रस्थान किया ।

गत्वा तु स महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ।
अयाचद् भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः ॥३५॥
त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत् ।

वहाँ पहुँचकर सद्भावनायुक्त भरतजीने अपने बड़े भाई सत्य-पराक्रमी महात्मा रामसे याचना की और यों कहा—'हे धर्मज्ञ ! आप ही राजा हों ।'

रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशाः ॥३६॥
न चैच्छत् पितुरादेशाद् राज्यं रामो महाबलः ।
पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुनः पुनः ॥३७॥
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः ।

परन्तु महान् यशस्वी परम उदार प्रसन्नमुख महाबली रामने भी पिताके आदेशका पालन करते हुए राज्यकी अभिलाषा न की और उन भरताग्रजने राज्यके लिये न्यास (चिह्न) रूपमें अपनी खड़ाऊँ भरतको देकर उन्हें बार-बार आग्रह करके लौटा दिया ।

स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन् ॥३८॥
नन्दिग्रामेऽकरोद् राज्यं रामागमनकाङ्क्षया ।

अपनी अपूर्ण इच्छाको लेकर ही भरतने रामके चरणोंका स्पर्श किया और रामके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए नन्दिग्राममें राज्य करने लगे।

गते तु भरते श्रीमान् सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥३९॥
रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च।
तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान् प्रविवेश ह ॥४०॥

भरतके लौट जानेपर सत्यप्रतिज्ञ जितेन्द्रिय श्रीमान् रामने वहाँपर पुनः नागरिक जनोंका आना-जाना देखकर [उनसे बचनेके लिये] एकाग्रभावसे दण्डकारण्यमें प्रवेश किया।

प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः।
विराधं राक्षसं हत्वा शरभङ्गं ददर्श ह ॥४१॥
सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च अगस्त्यभ्रातरं तथा।

उस महान् वनमें पहुँचनेपर कमललोचन रामने विराध नामक राक्षसको मारकर शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य मुनि तथा अगस्त्यके भ्राताका दर्शन किया।

अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम् ॥४२॥
खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ।

फिर अगस्त्य मुनिके कहनेसे उन्होंने ऐन्द्रधनुष, एक खड्ग और दो तूणीर, जिनमें बाण कभी नहीं घटते थे, प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किये।

वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह ॥४३॥
ऋषयोऽभ्यागमन् सर्वे वधायासुररक्षसाम्।

एक दिन वनमें वनचरोंके साथ रहनेवाले रामके पास असुर तथा राक्षसोंके वधके लिये निवेदन करनेको वहाँके सभी ऋषि आये।

स तेषां प्रतिशुश्राव राक्षसानां तदा वने ॥४४॥
प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम्।
ऋषीणामग्निकल्पानां दण्डकारण्यवासिनाम् ॥४५॥

उस समय रामने दण्डकारण्यवासी अग्निके समान तेजस्वी उन ऋषियोंको राक्षसोंके मारनेका वचन दिया और संग्राममें उनके वधकी प्रतिज्ञा की।

तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी।
विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी ॥४६॥

वहाँ ही रहते हुए श्रीरामने इच्छानुसार रूप बनानेवाली जनस्थाननिवासिनी शूर्पणखा नामकी राक्षसीको [लक्ष्मणके द्वारा उसका नाक कटाकर] कुरूप कर दिया।

ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान् सर्वराक्षसान्।
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम् ॥४७॥
निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान्।

तब शूर्पणखाके कहनेसे चढ़ाई करनेवाले सभी राक्षसोंको और खर, दूषण, त्रिशिरा तथा उनके पृष्ठपोषक असुरोंको रामने युद्धमें मार डाला।

वने तस्मिन् निवसता जनस्थाननिवासिनाम् ॥४८॥
रक्षसां निहतान्यासन् सहस्राणि चतुर्दश।

उस वनमें निवास करते हुए उन्होंने जनस्थानवासी चौदह हजार राक्षसोंका वध किया।

ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥४९॥
सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम् ।

तदनन्तर अपने कुटुम्बका वध सुनकर रावण नामका राक्षस क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और उसने मारीच राक्षससे सहायता माँगी।

वार्यमाणः सुबहुशो मारीचेन स रावणः ॥५०॥
न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते ।

यद्यपि मारीचने यह कहकर कि 'हे रावण! उस बलवान् रामके साथ तुम्हारा विरोध ठीक नहीं है, रावणको अनेकों बार मना किया;

अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥५१॥
जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा ।

परन्तु कालकी प्रेरणासे रावणने मारीचके वाक्योंको टाल दिया और उसके साथ ही रामके आश्रमपर गया।

तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ ॥५२॥
जहार भार्यां रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम् ।

मायावी मारीचके द्वारा उसने दोनों राजकुमारोंको आश्रमसे दूर हटा दिया और स्वयं रामकी पत्नी सीताका अपहरण कर लिया, [जाते समय मार्गमें विघ्न डालनेके कारण उसने] जटायुनामक गृध्रका वध किया।

गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम् ॥५३॥
राघवः शोकसंतप्तो विललापाकुलेन्द्रियः ।

तत्पश्चात् जटायुको आहत देखकर और [उसीके मुखसे] सीताका हरण सुनकर रामचन्द्रजी शोकसे पीड़ित होकर विलाप करने लगे, उस समय उनकी सभी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी थीं।

ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम् ॥५४॥
मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं संददर्श ह ।
कबन्धं नाम रूपेण विकृतं घोरदर्शनम् ॥५५॥
तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः ।

फिर उसी शोकमें पड़े हुए उन्होंने जटायु गृध्रका अग्निसंस्कार किया और वनमें सीताको ढूँढ़ते हुए कबन्धनामक राक्षसको देखा, जो शरीरसे विकृत तथा भयङ्कर दीखनेवाला था । महाबाहु रामने उसे मारकर उसका भी दाह किया, अतः वह स्वर्गको चला गया ।

स चास्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम् ॥५६॥
श्रमणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव ।

जाते समय उसने रामसे धर्मचारिणी शबरीका पता बतलाया और कहा—हे रघुनन्दन ! आप धर्मपरायणा संन्यासिनी शबरीके आश्रमपर जाइये ।

सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः ॥५७॥
शबर्या पूजितः सम्यग् रामो दशरथात्मजः ।

शत्रुहन्ता महान् तेजस्वी दशरथकुमार राम शबरीके यहाँ गये, उसने इनका भलीभाँति पूजन किया ।

पम्पातीरे हनुमता सङ्गतो वानरेण ह ॥५८॥
हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः ।

फिर वे पम्पासरके तटपर हनुमान्‌नामक वानरसे मिले और उन्हींके कहनेसे सुग्रीवसे भी मेल किया ।

सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः ॥५९॥
आदितस्तद् यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः ।

तदनन्तर महाबलवान् रामने आदिसे ही लेकर जो कुछ हुआ था वह और विशेषतः सीताका वृत्तान्त सुग्रीवसे कह सुनाया ।

सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः ॥६०॥
चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम् ।

वानर सुग्रीवने रामकी सारी बातें सुनकर उनके साथ प्रेमपूर्वक अग्निको साक्षी बनाकर मित्रता की ।

ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति ॥६१॥
रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद् दुःखितेन च ।

उसके बाद वानरराज सुग्रीवने स्नेहवश वालीके साथ वैर होनेकी सारी बातें रामसे दुखी होकर बतलायीं ।

प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति ॥६२ ॥
वालिनश्च बलं तत्र कथयामास वानरः ।
सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे ॥६३॥

उस समय रामने वालीको मारनेकी प्रतिज्ञा की, तब वानर सुग्रीवने वहाँ वालीके बलका वर्णन किया; क्योंकि सुग्रीवको रामके बलके विषयमें बराबर शङ्का बनी रहती थी ।

राघवप्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम् ।
दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसन्निभम् ॥६४॥

रामकी प्रतीतिके लिये उन्होंने महान् पर्वताकार दुन्दुभि दैत्यका शरीर दिखलाया ।

उत्स्मयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः ।
पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सम्पूर्णं दशयोजनम् ॥६५॥

महाबली रामने तनिक मुसकराकर उस अस्थिसमूहको देखा और पैरके अँगूठेसे उसे दस योजन दूर फेंक दिया ।

बिभेद च पुनस्तालान् सप्तैकेन महेषुणा ।
गिरिं रसातलं चैव जनयन् प्रत्ययं तदा ॥६६॥

फिर एक ही महान् बाणसे उन्होंने अपना विश्वास दिलाते हुए सात तालवृक्षोंको और पर्वत तथा रसातलको बींध डाला ।

ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः ।
किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा ॥६७॥

तदनन्तर रामके इस कार्यसे महाकपि सुग्रीव मन-ही-मन प्रसन्न हुए और उन्हें रामपर विश्वास हो गया । फिर वे उनके साथ किष्किन्धा गुहामें गये ।

ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिङ्गलः ।
तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः ॥६८॥
अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः ।
निजघान च तत्रैनं शरेणैकेन राघवः ॥६९॥

और वहाँपर सुवर्णके समान पिङ्गलवर्णवाले वीरवर सुग्रीवने गर्जना की, उस महानादको सुनकर वानरराज वाली अपनी पत्नी ताराको आश्वासन देकर तत्काल घरसे बाहर निकला और सुग्रीवसे भिड़ गया । वहाँ रामने वालीको एक ही बाणसे मार गिराया ।

ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा वालिनमाहवे ।
सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत् ॥७०॥

सुग्रीवके कथनानुसार उस संग्राममें वालीको मारकर उसके राज्यपर रामने सुग्रीवको ही बिठा दिया ।

स च सर्वान् समानीय वानरान् वानरर्षभः ।
दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥७१॥

तब उन वानरराजने भी सभी वानरोंको बुलाकर जानकीका पता लगानेके लिये उन्हें चारों दिशाओंमें भेजा ।

ततो गृध्रस्य वचनात् सम्पातेर्हनुमान् बली ।
शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम् ॥७२॥

तत्पश्चात् सम्पातिनामक गृध्रके कहनेसे बलवान् हनुमान्‌जी सौ योजन विस्तारवाले क्षार समुद्रको कूदकर लाँघ गये ।

तत्र लङ्कां समासाद्य पुरीं रावणपालिताम् ।
ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम् ॥७३॥

और वहाँ रावणपालित लङ्कापुरीमें पहुँचकर अशोकवाटिकामें सीताको चिन्तामग्न देखा ।

निवेदयित्वाभिज्ञानं प्रवृत्तिं विनिवेद्य च ।
समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम् ॥७४॥

तब उन विदेहनन्दिनीको अपनी पहचान देकर रामका सन्देश सुनाया और उन्हें सान्त्वना देकर उन्होंने वाटिकाका द्वार तोड़ डाला ।

पञ्च सेनाग्रगान् हत्वा सप्त मन्त्रिसुतानपि ।
शूरमक्षं च निष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत् ॥७५॥

फिर पाँच सेनापतियों और सात मन्त्रिकुमारोंकी हत्या कर वीर

अक्षकुमारका भी कचूमर निकाला, इसके बाद [जान-बूझकर] पकड़े गये।

अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात् ।
मर्षयन् राक्षसान् वीरो यन्त्रिणस्तान् यदृच्छया ॥७६॥

ब्रह्माजीके वरदानसे अपनेको ब्रह्मपाशसे छूटा हुआ जानकर भी वीर हनुमान्‌जीने अपनेको बाँधनेवाले राक्षसोंका अपराध स्वेच्छानुसार सह लिया।

ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कामृते सीतां च मैथिलीम् ।
रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥७७॥

तत्पश्चात् मिथिलेशकुमारी सीताके [स्थानके] अतिरिक्त समस्त लङ्काको जलाकर वे महाकपि हनुमान्‌जी रामको प्रिय सन्देश सुनानेके लिये लङ्कासे लौट आये।

सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम् ।
न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः ॥७८॥

अपरिमित बुद्धिशाली हनुमान्‌जीने वहाँ जा महात्मा रामकी प्रदक्षिणा करके यों सत्य निवेदन किया—'मैंने सीताजीका दर्शन किया है।'

ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः ।
समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसंनिभैः ॥७९॥

इसके अनन्तर सुग्रीवके साथ भगवान् रामने महासागरके तटपर जाकर सूर्यके समान तेजस्वी बाणोंसे समुद्रको क्षुब्ध किया।

दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः ।
समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत् ॥८०॥

तब नदीपति समुद्रने अपनेको प्रकट कर दिया, फिर समुद्रके ही कहनेसे रामने नलसे पुलका निर्माण कराया ।

तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे ।
रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत् ॥८१॥

और उसी पुलसे लङ्कापुरीमें जाकर रावणको मारा । फिर सीताके मिलनेपर रामको बड़ी लज्जा हुई ।

तामुवाच ततो रामः परुषं जनसंसदि ।
अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती ॥८२॥

तब भरी सभामें सीताके प्रति वे मर्मभेदी वचन कहने लगे । उनकी इस बातको न सह सकनेके कारण साध्वी सीता अग्निमें प्रवेश कर गयीं ।

ततोऽग्निवचनात् सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम् ।
कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥८३॥
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः ।

इसके बाद अग्निके कहनेसे उन्होंने सीताको निष्कलङ्क माना । महात्मा रामचन्द्रजीके इस महान् कर्मसे देवता और ऋषियोंसहित चराचर त्रिभुवन सन्तुष्ट हो गया ।

बभौ रामः सम्प्रहृष्टः पूजितः सर्वदैवतैः ॥८४॥
अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह ॥८५॥

फिर सभी देवताओंसे पूजित होकर राम बहुत ही प्रसन्न हुए और राक्षसराज विभीषणको लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त करके कृतार्थ हो गये। उस समय निश्चिन्त होनेके कारण उनके आनन्दका ठिकाना न रहा।

देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च वानरान्।
अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः ॥८६॥

यह सब हो जानेपर राम देवताओंसे वर पाकर और मरे हुए वानरोंको जीवन दिलाकर अपने सभी साथियोंके साथ पुष्पकविमानपर चढ़कर अयोध्याके लिये प्रस्थित हुए।

भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः।
भरतस्यान्तिके रामो हनूमन्तं व्यसर्जयत् ॥८७॥

भरद्वाज मुनिके आश्रमपर पहुँचकर सबको आराम देनेवाले सत्यपराक्रमी रामने भरतके पास हनुमान्‌को भेजा।

पुनराख्यायिकां जल्पन् सुग्रीवसहितस्तदा।
पुष्पकं तत् समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा ॥८८॥

फिर सुग्रीवके साथ कथा-वार्ता कहते हुए पुष्पकारूढ़ हो वे नन्दिग्रामको गये।

नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः।
रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान् ॥८९॥

निष्पाप रामचन्द्रजीने नन्दिग्राममें अपनी जटा कटाकर भाइयोंके साथ, सीताको पानेके अनन्तर, पुनः अपना राज्य प्राप्त किया है।

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः॥९०॥

अब रामके राज्यमें लोग प्रसन्न, सुखी, सन्तुष्ट, पुष्ट, धार्मिक तथा रोग-व्याधिसे मुक्त रहेंगे, उन्हें दुर्भिक्षका भय न होगा।

न पुत्रमरणं केचिद् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः॥९१॥

कोई कहीं भी अपने पुत्रकी मृत्यु नहीं देखेंगे, स्त्रियाँ विधवा न होंगी, सदा ही पतिव्रता होंगी।

न चाग्निजं भयं किञ्चिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः।
न वातजं भयं किञ्चिन्नापि ज्वरकृतं तथा॥९२॥

आग लगनेका किञ्चित् भी भय न होगा, कोई प्राणी जलमें नहीं डूबेंगे; वात और ज्वरका भय थोड़ा भी नहीं रहेगा।

न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा।
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च॥९३॥
नित्यं प्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा।

क्षुधा तथा चोरीका डर भी जाता रहेगा, सभी नगर और राष्ट्र धन-धान्यसम्पन्न होंगे। सत्ययुगकी भाँति सभी लोग सदा प्रसन्न रहेंगे।

अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः॥९४॥
गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम्।
असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः॥९५॥
राजवंशाञ्छतगुणान् स्थापयिष्यति राघवः।
चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन् स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति॥९६॥

महायशस्वी राम बहुत-से सुवर्णोंकी दक्षिणावाले सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे, उनमें विधिपूर्वक विद्वानोंको दस हजार करोड़ (एक खर्व) गौ

और ब्राह्मणोंको अपरिमित धन देंगे तथा सौ गुने राजवंशोंकी स्थापना करेंगे। संसारमें चारों वर्णोंको वे अपने-अपने धर्ममें नियुक्त रखेंगे।

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥९७॥

फिर ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करनेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी अपने परमधामको पधारेंगे।

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९८॥

वेदोंके समान पवित्र, पापनाशक और पुण्यमय इस रामचरितको जो पढ़ेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा।

एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः।
सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥९९॥

आयु बढ़ानेवाली इस रामायण-कथाको पढ़नेवाला मनुष्य मृत्युके अनन्तर पुत्र, पौत्र तथा अन्य परिजनवर्गके साथ ही स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होगा।

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीया-
ज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥१००॥

इसे ब्राह्मण पढ़े तो विद्वान् हो, क्षत्रिय पढ़ता हो तो पृथ्वीका राज्य प्राप्त करे, वैश्यको व्यापारमें लाभ हो और शूद्र भी प्रतिष्ठा प्राप्त करे।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥ १ ॥

भगवन् !

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥

रघुनाथजी ! आप सब प्राणियोंके अन्तरात्मा हैं—घट-घटकी बात जाननेवाले हैं; मैं आपसे सच-सच कहता हूँ, मुझे दूसरी कोई इच्छा नहीं है । मुझे तो आप अपनी निर्भरा भक्ति दीजिये और मेरे हृदयको कामादि दोषोंसे रहित कर दीजिये ।